शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-1 (Jan.-June) 2025
Page No- 128-135

©2025 Shodhaamrit (Online)
www.shodhaamrit.gyanvividha.com

अनु देवी
पी. एच. डी. शोधच्छात्रा
संस्कृत-विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला-171005.

डॉ. सपना चंदेल
शोध-निर्देशक
संस्कृत-विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला-171005.

Corresponding Author :
अनु देवी
पी. एच. डी. शोधच्छात्रा
संस्कृत-विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला-171005.

राष्ट्रपथप्रदर्शनम् महाकाव्य में राष्ट्रनिर्माणार्थ गुरु भूमिका

शोध सारांश : राष्ट्र निर्माण का तात्पर्य एक ऐसे समाज की व्यवस्था अथवा स्थापना करना है जो सामाजिक, सांस्कृतिक,राजनैतिक, आर्थिक और नैतिक मूल्यों पर आधारित हो। ऐसे समाज को स्थापित करने में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। अतः जिस राष्ट्र की शिक्षा पद्धति जितनी सुदृढ़ होगी वह राष्ट्र उतना ही शक्तिशाली बनेगा । छात्रों में उत्कृष्ट मुल्यों तथा गुणों से युक्त ज्ञान का संचार करने के लिए गुरु महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गुरु न केवल ज्ञान का प्रकाश फैलाता है अपितु समाज एवं राष्ट्र के लिए आदर्श नागरिकों अथवा शिष्यों का निर्माण भी करता है। भारत के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में गुरु को हमेशा सर्वोच्चतम स्थान प्राप्त है। भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु को ब्रह्मा विष्णु और महेश के रूप में मानकर उनका हृदय से सम्मान किया जाता है। राष्ट्र निर्माण में गुरु का योगदान केवल अकादमिक शिक्षा तक सीमित नहीं है वह नैतिकता, आदर्श और चरित्र निर्माण को भी प्रभावित करता है। अतः गुरु का प्रभाव छात्रों के जीवन में दूरगामी होता है जो भविष्य में समाज और राष्ट्र की दिशा और दशा निर्धारित करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री द्वारा प्रणीत "राष्ट्रपथप्रदर्शनम्" महाकाव्य में वर्णित राष्ट्रनिर्माणार्थ गुरु की भूमिका का उल्लेख किया जाएगा।

कुट शब्द : राष्ट्रनिर्माण, गुरु, कवि, राष्ट्र का विकास ।

यदि राष्ट्र के विकास की नींव छात्र वर्ग को कहा जाए तो गुरु उस नींव को मजबूत बनाने वाला सूत्रधार है। क्योंकि वह छात्र में अच्छी शिक्षा तथा नैतिक गुणों का संचार करता है। आदिकाल से ही गुरु का स्थान मानव जीवन में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। गुरु विवेक से ही मनुष्य और समाज सभ्यता के पथ पर अग्रसर हुआ है। श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की स्थापना भी गुरु परम्परा से हुई है।[1] मनुष्य की प्रथम गुरु उसकी मां को कहा गया है, क्योंकि बच्चे को चारित्रिक शिक्षा वह गर्भधान से ही देती

है। तत्पश्चात् व्यक्ति अपने विकास के लिए जिससे शिक्षा ग्रहण करता है वह द्वितीय गुरु है और यही गुरु शिष्य को अज्ञान रुपी अंधकार से बाहर निकालकर विद्यारुपी प्रकाश से अवगत करवाता है –

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया,
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नम :।।[2]

अर्थात- मैं अज्ञान के अन्धकार में पैदा हुआ था और मेरे आध्यात्मिक गुरु ने ज्ञान की मशाल से मेरी आँखें खोली है। मैं उन्हें अपना सादर नमन करता हूँ।

गुरु में 'गु' शब्द का अर्थ है, अंधकार (अज्ञान) और 'रु' शब्द का अर्थ है प्रकाश या ज्ञान, ज्ञान रुपी अंधकार को नष्ट करने वाला जो ब्रह्म रुप प्रकाश है। वही सद् गुरु देव है–

गुकारस्त्वन्धकारश्च रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञान-ग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः।।[3]

द्वयोपनिषद में **'गु'** का अर्थ अन्धकार और **'रु'** शब्द का अर्थ उसका निरोधक कहा गया है। अर्थात अज्ञान के अन्धकार को रोकन वाले व्यक्ति को गुरु कहते हैं –

गुशब्दस्त्वन्धकारःस्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते।।[4]

गुरु को कवि, अग्नि, आचार्य, उपाध्याय, प्रवक्ता, आख्याता, अध्यापक आदि अनेक नामों से अलङ्कृत किया गया है।

गुरु परम्परा वैदिक काल से ही चली आ रही है। वर्तमान में जब हम गुरु महत्व के विषय में चिंतन करते है तो सर्वप्रथम हमारे समक्ष वेद, उपनिषद एवं पुराणों में वर्णित गुरु महिमा के दृष्टान्त प्रस्तुत होते हैं, जिन्हें खंगालकर हमारी अल्प बुद्धि गुरु रूपी ज्ञान पाकर विस्तृत हो जाती है। वेदों में यदि ऋग्वेद की बात करें तो उसमें गुरु को कवि शब्द से अभिहित किया गया है जिसका अर्थ है विद्वनजन्–

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुनासमोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्र अन्तः कवयः सुदीतयः॥[5]

अर्थात्– जो सुन्दर प्रसन्नचित प्रशंसित बुद्धि या सुन्दर विद्या के प्रकाशवाले विद्वानजन (कवि) समीचीन जिसका निवास है ऐसे दो समान विद्या या निमित्त सुख भोगनेवालों को प्राप्त हो या बिजली और सूर्य के तथा अन्तरिक्ष या समुद्र के बीच नवीन- नवीन विस्तृत वस्तुज्ञान को उत्पन्न करते हैं वे सब विद्या और सुखों का अच्छे प्रकार विस्तार करते हैं।

यहां उत्तम बुद्धि युक्त, विद्या का प्रकाशक, तथा जिसके समक्ष ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य औरों को उपदेश देने वाला विद्वजन ही कवि है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में गुरु को अग्नि भी कहा गया है

अग्ने अच्छवदेह नः प्रत्यङ्गः सुमना भव ।[6]

अर्थात्– हे! विद्वान् पुरुष (अग्नि) अच्छे प्रकार से यहाँ पर हमसे बोल, और प्रत्यक्ष होकर हमारे लिए प्रसन्न मन हो।

इसके अतिरिक्त यहाँ आदि गुरु रूप में अग्नि देव से मनुष्य को विद्या ग्रहण करके एश्वर्य को प्राप्त करने की कामना की गई है।

अथर्ववेद में गुरु को आचार्य पद अभिहित किया गया है जो शिष्य को विद्यार्जन के लिए अपने समीप रखता है –

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः,
तं रात्रिस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्दष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।[7]

अर्थात् आचार्य के समीप ले जाए गए बालक को आचार्य उसी प्रकार धारण करता है, जिस प्रकार माता शिशु को गर्भ में धारण करती है। उस बालक को आचार्य तीन रात्रि पर्यन्त अपने उदर में रखता है, उसे शिक्षित करता है जिसे बाद में देवता देखने को आते हैं।

वायु पुराण में आचार्य का स्वयमाचरण करने वाला लक्षण दिया है–

स्वयमाचरते यस्माद् आचारं स्थापयत्यपि,
आचिनोति च शास्त्रार्थान् यमैः सनियमैर्युतः।।[8]

अर्थात- जो स्वयं अपनी विद्या के अनुकूल आचरण करते है, विद्यार्थियों का आचार में स्थापन करते हैं और यम-नियमशील होकर शास्त्रीय अर्थों की उपपत्ति करते हैं वे आचार्य है।

इसी प्रकार निरुक्त में आचार्य का निर्वचन **"आचारं ग्राह्यति, आचिनोत्यर्थान्, आचिनोति**

बुद्धिमिति वा"[9] किया है। जिसका अर्थ है आचार को ग्रहण कराने वाला, विद्यार्थी को आचार सिखाने वाला, पदार्थों का संचय करने वाला अथवा विद्यार्थी को सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पदार्थों का दर्शन कराने वाला तथा शिष्य की बुद्धि को बढ़ाने वाला आचार्य है।

श्रीमद्‌भागवत् पुराण में गुरु को उत्कृष्ट ज्ञान का मार्गदर्शक कहा गया है–

तस्माद् गुरुं प्रपद्यते जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातंब्रह्मण्युपशमाश्रयम्।।[10]

अर्थात् जो परम् कल्याण का जिज्ञासु हो, उसे गुरुदेव की शरण लेनी चाहिए। गुरुदेव ऐसे हो जो शब्द ब्रह्म विद्वान हो। जिसे वे ठीक–ठीक समझा सकें और साथ ही परब्रह्म में परिनिष्ठित तत्वज्ञानी भी हो, ताकि यह अपने अनुभव के द्वारा प्राप्त हुई रहस्य की बातों को बता सकें।

उपनिषद् में गुरु शिष्य का घनिष्ट सम्बन्ध बताया गया है। उप तथा नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु का अर्थ ही है शिष्य का गुरु के समीप ज्ञान अर्जन करना।[11] अतः इसमें गुरु उसे कहा गया है जो ब्रह्मविद्या का उपदेश करके वास्तविकता का बोध करवाएं–

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय,
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥[12]

अर्थात् वह विद्वान गुरु अपने समीप आए हुए उस पूर्णत्तया शान्तिचित्त एवं जितेन्द्रिय शिष्य को उस ब्रह्मविद्या का तत्वतः उपदेश करे जिससे उसे सत्य और अक्षर पुरुष का ज्ञान होता है।

लौकिक ग्रन्थ रामायण में भी माता-पिता के द्वारा बालक को गुरु के अधीन रखकर विद्याध्ययन करवाया जाता था। इस काल में विद्यार्थी गुरु के आश्रम में निवास करता था और उसकी निजी देखरेख में अपने मानसिक गुणों को विकसित करता था।
शिष्य के चारित्रिक विकास के लिए गुरु का व्यक्तित्व आदर्शभूत होता था।[13] गुरु के विषय में वसिष्ठ का कथन है–

पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ। प्रज्ञांददाति चाचार्यस्तस्मात् स गुरुरुच्यते ॥[14]

अर्थात– पुरुष प्रवर ! पिता पुरुष के शरीर को उत्पन्न करता है इसलिए गुरु है और आचार्य उसे ज्ञान देता है इसलिए गुरु कहलाता है।

गुरु के सम्पर्क में आने से मनुष्य चारित्रिक एवं मानसिक रूप से सशक्त बनता है। रामायण में राजा दशरथ द्वारा राम और लक्ष्मण को कुछ समय के लिए विश्वामित्र को समर्पित करने का प्रसंग आता है जहां वे मुनि की संगति में एसे वातावरण और एसे व्यक्तियों के सम्पर्क में आए जो उनके स्वस्थ नैतिक एवं मानसिक उत्थान के लिए परम सहायक सिद्ध हुए।[15] महाभारत में गुरु की सेवा करने से मनुष्य को कीर्ति, पुण्य, यश और परलोक की प्राप्ति करने वाला कहा गया है–

नित्यं परिचरेच्चैव तद्वै सुकृतमुत्तमम ,
कीर्ति पुण्यं यशो लोकान् प्राप्स्यसे राजसत्तम।[16]

इसके विपरित इनकी आज्ञा की अवहेलना करने से मानव को इस लोक तथा परलोक में सुख प्राप्त नहीं होता–

नचायं न परो लोकस्तस्य चैव परन्तप।
अमानिता नित्यमेव यस्यैते गुरवस्त्रयः।।[17]

उद्योग पर्व में गुरु के महात्म्य को इस प्रकार दर्शाया गया है –

आचार्य योनिमिह ये प्रविश्य भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्यै चरन्ति ।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति प्रहाय देहं परमं यांति योगम्।।[18]

अर्थात – ब्रह्मविद्या को पाने के लिए जो आचार्य के घर रहकर, निष्कपट भाव से उनकी सेवा करके उनके प्रिय शिष्य बनते हैं और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं वे इस लोक में शास्त्रकार होते हैं और देहको त्यागने पर परब्रह्म के साथ एकतारूप परमयोग को पाते हैं।

श्रीमद्भगवतगीता में गुरु की महत्ता बताते हुए भगवान श्री कृष्ण को आध्यात्मिक गुरु के रुप में संबोधित किया गया है –

पितासि लोकस्य चराचरस्य; त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो;लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ।।[19]

अर्थात– आप इस चल और अचल जगत के पिता और आप ही इस जगत में पूज्यनीय आध्यात्मिक गुरु हैं, हे अचिन्त्य शक्ति वाले प्रभु! तीनों लोकों में अन्य न तो कोई आपके समान हो सकता हैं और न ही कोई आपसे बढकर हो सकता है।

मनुस्मृति में आचार्य, उपाध्याय, और गुरु का अर्थ भिन्न बताया गया है। मनु के अनुसार आचार्य वह है जो ब्राह्मण शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार करके उसे कल्प एवं उपनिषदों के सहित वेद शाखा पढ़ाता है–

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेदद्विजः
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्य प्रचक्षते।[20]

उपाध्याय उसे कहा गया है जो ब्राह्मण वेद के एक देश मन्त्र तथा ब्राह्मण भाग को, वेदांगों को जीविका के लिए पढ़ाता है–

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते।।[21]

गुरु वह है जो शास्त्रानुसार गर्भाधानादि संस्कारों को करता है और अन्नादि के द्वारा बढ़ाता है–

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधिः।
संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते।।[22]

नारद स्मृति में गुरु के विषय में कहा गया है कि गुरु के समीप एवं गुरु के बिना केवल पुस्तकों के आधार पर जो शिष्य अध्ययन करता है वह सभा में उसी प्रकार शोभा नहीं पाता जिस प्रकार किसी स्त्री का जारपुत्र शोभा नहीं पाता।[23]

प्राचीन भारतीय गुरु-परम्परा का अनुसरण करते हुए दुर्गादत्त शास्त्री ने भी अपने काव्य के माध्यम से गुरु को राष्ट्र निर्माण का आधार स्तम्भ बताया है। कवि के अनुसार एक छात्र को प्रगति के शिखर तक गुरु ही ले जाता है। इसके लिए उन्होंने प्राचीन भारतीय गुरु परम्परा के दृष्टान्तों को उजागृत करते हुए छात्रों को उनका अनुसरण करने का सन्देश दिया है-

पाण्डुपुत्रा यथा द्रोणे दाशरथिर्वसिष्ठके।
एवं यस्तु गुरौ छात्रः स एव शोभनो मतः ।।[24]

अर्थात् पाण्डव जैसे गुरु द्रोणाचार्य में श्रद्धा रखते थे और दशरथ के पुत्र राम जैसे वसिष्ठ में श्रद्धा रखते थे, इसी प्रकार जो छात्र गुरु में श्रद्धा रखता है, वही अच्छा कहा जाता है।

यहाँ कवि यह कहना चाहते हैं कि जिस प्रकार राम व पाण्डव वसिष्ठ और द्रोणाचार्य पर श्रद्धा रखने के कारण श्रेष्ठ राजा के रुप में प्रतिष्ठित हुए, उसी प्रकार छात्र भी गुरु के प्रति कृतज्ञता रखने पर राष्ट्र के श्रेष्ठ निर्माता बन सकते हैं। एकलव्य की गुरुभक्ति का उदाहरण देकर कवि गुरु-तेज का उल्लेख करते हुए कहते है–

द्रोणाचार्य शिला मूर्तिमेकलव्यो व्यपूजयत्।
भक्त्या तथैव संजातो धनुर्धारि धुरन्धरः।[25]

अर्थात्– एकलव्य ने द्रोणाचार्य की पत्थर की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करते हुए शस्त्र चलाने का अभ्यास था किया था। उस भक्ति से वह धनुषधारियों का शिरोमणि बन गया।

यहां काव्यकार ने गुरु के अन्दर छिपी शक्ति को उजागृत किया है। कवि की अवमानना है कि जैसे एकलव्य द्रोणाचार्य की मूर्ति की उपासना करके धनुष विद्या में पारङ्गत होकर अर्जुन से भी श्रेष्ठ धनुर्धारी बन गया उसी प्रकार गुरु के प्रति श्रद्धा रखने मात्र से ही शिष्य अपने संकल्प की सिद्धि कर सकता है। इसके अतिरिक्त उपमन्यु तथा आरुणि द्वारा आयोद्धौम्य ऋषि की आज्ञा का पालन करने पर उन्हें समस्त विद्या स्वतः आने का वरदान प्राप्त हुआ था।[26] इस कथा का वर्णन महाभारत मे भी प्राप्त होता है।[27] अतः गुरु आज्ञा की अव्हेलना न करने पर विद्यार्जन पर निपुणता प्राप्त कर सकते हैं। कवि ने कृष्ण भगवान की गुरुभक्ति का अन्य उदाहरण प्रस्तुत किया है।[28] भगवान कृष्ण ने अपने गुरु से सभी वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त करके धर्म एवं नितिशास्त्र में दक्ष हुए।परिणामस्वरुप उन्होंने पाण्डव एवं कौरवों के मध्य हुए युद्ध में अपनी नितिपरक विवेक-चातुर्यता से पाण्डवों को युद्ध में विजय दिलवाई।कवि यह भी मानते है कि जिस प्रकार राजा दिलीप को गुरु की सेवा से पुत्र की प्राप्ति हुई उसी प्रकार शिक्षार्थियों को भी गुरु के कर्तव्य का पालन करके ईष्ट फल की प्राप्ति हो सकती है –

सांयकाले यदा राजा समागच्छद्गवा सह।
वरदाने ददौ तस्मै पुत्ररत्नस्य कोविदः।।[29]

अर्थात् - सांयकाल में जब राजा गौ के साथ वसिष्ठ के

आश्रम में आया तो महर्षि ने उसे पुत्र रत्न का वरदान दिया।

अतः कवि ने छात्रों को जागरूक करते हुए कहा है कि जो विद्यार्थी विद्या का उपासक होगा उसे सर्वप्रथम गुरु में श्रद्धा रखनी होगी क्योंकि विद्या केवल गुरु की सेवा से ही प्राप्त होती है। जो गुरु का आदर नहीं करेगा वह पथभ्रष्ट हो जाएगा।[30] अतः ऐसा छात्र राष्ट्र की प्रगति पर बाधक सिद्ध होगा। गुरु के प्रति आस्था रखने से लाभान्वित शिष्यों के प्राचीन प्रसंगों को उद्घाटित करने के अतिरिक्त कवि ने दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द की गुरुकृपा के कारण देश की समृद्धि का वर्णन अपने काव्य में किया है। धैर्यशाली दयानन्द ने जब सारी विद्याएं सीख ली तो नम्रता पूर्वक उन्होंने गुरु को दक्षिणा में लौंग देने चाहे परन्तु विरजानन्द ने दक्षिणा स्वरुप भारत में वैदिक धर्म का प्रचार[31] तथा सामाजिक कुरीतियों को जड़मुक्त करने का आदेश दिया–

अस्पृश्यतादि दोषैश्च जातिग्रस्ता हि वर्तते,
उद्धर कर्दमादेना भेषैव गुरु दक्षिणा ।।[32]

अर्थात् आज सारी जाति अस्पृश्यता आदि दोषों से जकड़ी हुई है। इस कीचड़ से जाति का उद्धार करो यही मेरी गुरु दक्षिणा है।

गुरु आज्ञा को पाकर स्वामी दयानन्द जी ने जाति-अस्पृश्यता को दूर करने के लिए नगर-नगर भ्रमण किया तथा लोगों को इसके बारे में जागरूक किया। इस प्रकार उन्होंने समाज की इस रुढ़िवादिता को समाप्त करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[33] इसके अतिरिक्त उन्होंने भारत में वैदिक धर्म की स्थापना, सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका तथा ऋग्वेद एवं यजुर्वेद के उपर भाष्य की रचना करके अपना योगदान दिया, जिससे वर्तमान में हम सभी लाभान्वित हो रहे हैं। इस घटना का उल्लेख महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्वरचित आत्मकथा एवं बाबू देवेन्द्रनाथ द्वारा उनके जीवन-चरित पर रचित कृति में प्राप्त होता है। बल्यावस्था में ही पितामह, बहन और चाचा की मृत्यु को साक्षात् देखकर इनका हृदय व्यथित हो उठा और उनके मन में 'मृत्यु से कैसे बचा जाए' यह जानने की इच्छा प्रबल हुई। किसी के बताने पर ज्ञात हुआ कि योग विद्या ही इसका उपाय है। यहीं से उनका रुझान योगियों की और आकृष्ट हुआ[34], परिणाम स्वरुप इन्होंने सन्यास ग्रहण किया और महर्षि गुरु विरजानन्द से वेद व्याकरणादि की शिक्षा ग्रहण की। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् दयानन्द सरस्वती ने गुरु को लवङ्ग प्रिय होने के कारण जब उन्हें दक्षिणास्वरूप आधे सेर लवङ्ग देने चाहे, उस समय गुरुदेव ने उन्हें प्रेमपूर्वक अस्वीकार करते हुए कहा- मैं तुम से किसी प्रकार के धन की दक्षिणा नहीं चाहता हूँ अपितु दक्षिणास्वरुप तुम्हारा जीवन चाहता हूँ। तुम प्रतिज्ञा करो कि जितने दिन जीवित रहोगे उतने दिन आर्यावर्त में आर्ष ग्रन्थों की महिमा स्थापित करोगे, तथा अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन करोगे और भारत में वैदिक धर्म की स्थापना में अपने प्राण तक अपर्ण कर दोगे। गुरु के ऐसा कहने पर उन्होंने बिना किसी संकोच के तथास्तु कहकर उनके चरणों में प्रणत हो गए।[35] तत्पश्चात् उन्होंने सामाजिक कुरीतियों का विरोध एवं अनेक समाज सुधार के कार्य किए।

काव्यकार के अनुसार दयानन्द सरस्वती गुरु की आज्ञा का अनुसरण करके ही राष्ट्र हितार्थ प्रवृत्त हुए अतः राष्ट्र निर्माण में गुरु की भूमिका का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है।

दयानन्द सरस्वति के विषय में वीर सावरकर कहते हैं कि "वे स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा और हिन्दू जाति के रक्षक थे, उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने राष्ट्र की महान् सेवा की और कर रहा है।" विठ्ठल भाई पटेल ने कहा है "मैं ऋषि दयानन्द जी को अपना राजनैतिक गुरु मानता हूँ। मेरी दृष्टि में वे महान् विप्लववादी नेता और राष्ट्र विधायक थे" वहीं अनन्तरशयनं अय्यङ्गर लिखते हैं की "गांधी जी राष्ट्र के पिता थे, तो महर्षि दयानन्द सरस्वती उनके पितामह थे।"[36] इसी प्रकार पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री ने स्वामी विवेकानन्द द्वारा अमेरीका जैसे देशों में जाकर वैदिक धर्म की व्याख्या करके समस्त संसार के चक्षु को जागृत करने का वर्णन किया है।

जनवरी पौष संक्रान्ति के मध्य 1863 ई. में

माता भुवनेश्वरी देवी की छठी सन्तान के रुप में जन्मे स्वामी विवेकानन्द के बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ था।[37] बाल्यकाल से ही वें कुशाग्रबुद्धि एवं प्रतिभासम्पन्न नक्षत्र थे। विभिन्न प्रकार की पुस्तकों के अध्ययन से अल्प अवस्था में ही उनमें गहन चिन्तन शक्ति उत्पन्न हुई, जिस कारण सन्यास के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता ही रहा।[38] 1883 में अपनी बी.ए. पूर्ण करने के पश्चात् वें अध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने के लिए रामकृष्ण परमहंस के सान्निध्य में चले गए।[39] 1885 में श्री रामकृष्ण को कण्थ रोगग्रस्त होने के कारण काशीपुर में एक किराए के मकान में लाया गया। इसी बीच गुरु की सेवा में लीन विवेकानन्द ने रामकृष्ण के समक्ष इच्छा व्यक्त की कि वें गुरु देव की भांति दिन-रात निर्विकल्प समाधि में डूबे रहना चाहते हैं, परन्तु श्री रामकृष्ण ने उन्हें धिक्कारते हुए कहा - "छिः नरेंद्र, तुम सिर्फ अपनी मुक्ति की ईच्छा रखते हो। तुम्हें तो विशाल वट वृक्ष की तरह होना पड़ेगा जिसकी छाया में समस्त पृथ्वी के मनुष्य शांति लाभ करेंगे।[40] तदनन्तर उनकी कृपा से ही काशीपुर में ही नरेन्द्रनाथ ने एक दिन आध्यात्मिक जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि निर्विकल्प समाधि प्राप्त की थी। काशीपुर में श्री रामकृष्ण ने एक दिन कागज पर लिखा, नरेन्द्र को शिक्षा का प्रसार करना होगा।" अर्थात भारतवर्ष का जो शाश्वत आध्यात्मिक आदर्श अपने जीवन में उन्होंने स्थापित किया था, जगत में उन्ही का प्रसार नरेन्द्रनाथ को करना होगा।[41] गुरु-आज्ञा का पालन कर स्वामी जी ने 1893 ई. में उन्होंने शिकागों की धर्मसभा में अपने व्याख्यान दिए। उनके प्रभावपूर्ण व्याख्यानों से शिकागों के राजपथों पर उनके चित्र शोभित हुए। तथा धर्मसभा में विवेकानन्द निर्विरोध सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध हुए[42] जो भारत के लिए गौरव का विषय बना। इसके पश्चात उन्होंने अमेरिका के नगरों पेरिस एवं लंदन में धर्म प्रचार करके गुरु के आदेश का पालन किया।[43] पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री के अनुसार यही उनकी अपने गुरु परमहंस के लिए सच्ची गुरुदक्षिणा थी–

विदेशभ्रमण कृत्वा विवेकानन्द साधुना। आनृण्यं च गुरोः प्राप्तं विधाय देश मंगलम् ॥[44]

अर्थात् स्वामी विवेकानन्द ने विदेश भ्रमण के द्वारा देश की भलाई करके गुरु के ऋण से मुक्ति प्राप्त की।

यहां कवि गुरु-श्रद्धा के प्रति भावोन्मुख दिखाई पड़ते हैं। दुर्गादत्त शास्त्री स्वयं अध्यापक के पद पर आसीन रहे हैं। उन्होंने अपने अध्यापन काल में कई छात्रों का मार्गदर्शन करके देश के लिए अनेक धुरन्धर शिष्य प्रदान किए हैं। अतः कवि इस तथ्य से स्वयं सहमत होते हुए प्रतीत होते है कि शिष्य को गुरु के प्रति श्रद्धावान होना परमावश्यक है तभी गुरु उनका कल्याण करने में समर्थ हैं। प्रकृत्त उदाहरण में कवि अपने भावों को व्यक्त करते हुए यह कहने का प्रयास करते हैं कि यदि दयानन्द सरस्वती व एवं स्वामी विवेकानन्द ने गुरु के आदेशों की अवहेलना की होती तो आज भी हमारा देश सामाजिक कुरितियों से जूझ रहा होता, न हमें वेद और हिन्दू धर्म के विषय में उतना ज्ञान हो पाता और न ही विदेशों में भारत की प्रसिद्धि होती।अतः कवि की यह अवधारणा है कि वर्तमान में यदि छात्र अध्यापक द्वारा कथित निर्देशों का पालन करेंगे तो भविष्य में वें सशक्त राष्ट्र निर्माण के रूप में ऊभर सकते हैं। अतः काव्यकार ने गुरु को ब्रह्म-विष्णु-महेश्वर के समान माना है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुरेव महेश्वरः।
शक्तित्रयं गुरोर्मध्ये स-गुरुं तं नमाम्यहम् ॥[45]

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है और गुरु ही शिव है। तीनों शक्तियां गुरु में निवास करती है। उस अच्छे गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।

अतः काव्यसर्जक पण्डित दुर्गादुत्त शास्त्री ने अपने काव्य में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध संसार में बहुत पवित्र माना है→

शिष्याध्यापक सम्बन्धो लोके परम पावकः।
एतेनैव हि संसारे ज्योतिर्ज्ञानस्य दीप्यते ।[46]

कवि के अनुसार इस सम्बन्ध के माध्यम से ही संसार में ज्ञान की ज्योति जगती है। यदि शिष्य और अध्यापक के सम्बन्ध में कटुता पैदा होगी तो समस्त संसार अन्धकारमय हो जाएगा–

शिष्याध्यापक सम्बन्धः कटुर्यदा भविष्यति।
तदैव सकलो लोकश्चान्धकारे निमंक्ष्यति।।[47]

पण्डित दुर्गादत्त ने अपने काव्य में शिष्य का आचरण

गुरु पर निर्भर माना है–

आचरिष्यति यथाचार्यः शिष्यस्तथाचरिष्यति।
नाचरेच्च तदाचार्यः स्वशिष्यादयन्नवाञ्छति।[48]

अर्थात् जैसे गुरु आचरण करेगा वैसे ही शिष्य करेगा। इसलिए अध्यापक ऐसा आचरण न करे जिसको वह अपने शिष्य से न चाहता हो।

यहां कवि अपने काव्य के माध्यम से कहना चाहते हैं कि राष्ट्र का निर्माण अध्यापक के हाथों में ही है। राष्ट्र के भाग्य को बनाने वाला अध्यापक ही है। अध्यापक राष्ट्र का सूत्रधार है जिस नाटक का सूत्रधार जितना अच्छा होगा वह नाटक उतना ही अच्छा खेला जाएगा। अतः शिक्षक का जीवन इतना आदर्शमय होना चाहिए जैसा कि निर्मल शीशा होता है। जिसमें वह जब चाहे अपना मुख देख सकता है।[49] इसके साथ गुरु कदापि अपने शिष्य को अनुचित राह पर न ले जाए यदि ऐसा हो तो छात्र उसकी उपेक्षा करके अपने अन्तःकरण की अवाज सुनते हुए वही करे जो उचित हो। पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री ने गांधी के विद्यालय में घटी एक घटना का दृष्टान्त देकर यह बात स्पष्ट की है।

गुजरात की एक पाठशाला में इन्सपैक्टर द्वारा छात्रों के परीक्षण के लिए कुछ शब्द लिखवाएँ, जिनमें महात्मा गांधी की कैटल" इस शब्द की वर्तनी अशुद्ध हो गई। अध्यापक ने मोहनदास को अगले लड़के की स्लेट देखकर अपना शब्द शुद्ध करने के लिए कहा[50] परन्तु गांधी ने ऐसा करने पर अपनी आत्मा को गिराना अनुचित समझा–

गुरुं प्रसादयिष्येऽहमुपायैः विविधेः परैः ।
परं पतित आत्मा मे नोद्धर्तुं सुकरो भवेत।।[51]

अर्थात्- गांधी ने सोचा यदि गुरु मुझ पर नाराज हो जाएंगे तो मैं उन्हें दूसरे कई उपायों से प्रसन्न कर सकता हूँ। परन्तु यदि मेरी आत्मा एक बार गिर गयी तो इसका उद्धार करना कठिन होगा।

निरीक्षक के चले जाने पर अध्यापक उनके ऊपर अत्यन्त क्रोधित हुए तब गांधी ने उनसे कहा कि गुरुदेव मैं आपकी पीठ पीछे भी कभी चोरी नहीं करता हूँ तो आपके सामने मैं ऐसा कैसे कर सकता था–

भवतां तु परोक्षेऽपि न चौर्यं क्रियते मया।
वदामि सत्यमाचार्य प्रत्यक्षस्य तु का कथा ।।[52]

गांधी के इन शब्दों को सुनकर अध्यापक की आत्मग्लानि हुई और वें अपने किए पर पश्चाताप करने लगें–

अहो काष्टं महत्पापं गुरुर्भूत्वा करोम्यहम्।
स्वयमेव स्वशिष्यांस्तु पापाय प्रेरयाम्यहम्।।[53]

अर्थात्-हाय बड़ा कष्ट है, मैं अध्यापक होकर इतना बड़ा पाप कर रहा हूँ। मैं स्वयं ही अपने शिष्यों को पाप करने की प्रेरणा दे रहा हूँ।

महात्मा गांधी ने स्वयं इस घटना का उल्लेख अपनी आत्मकथा में किया है।[54]

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि गुरु-परम्परा ने प्राचीन काल से ही भारतीय समाज को श्रेष्ठ और आनन्दमय मार्ग दिखाए हैं। भारत की पावन भूमि पर जन्मे मर्यादा पुरुषोत्तम राम, श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध, शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी,राधाकृष्णन् और मा. स. गोलवलकार जैसे ऐतिहासिक महापुरुषों के व्यक्तित्व गुरुओं की असीम श्रद्धा और कृपा से ही श्रेष्ठ स्थान पर पहुंचे है।[55] अत: कहा जा सकता है कि गुरु राष्ट्रोन्नित में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है।

सन्दर्भ :

1. भारतीय संस्कृति, पृ.-46.
2. गर्ग संहिता 2.1.2.
3. श्री गुरु गीता,1.23.
4. द्व्योपनिषद,श्लोक–4.
5. ऋग्वेद,1.159.4.
6. वही 3.20.2.
7. अथर्ववेद,11.3.4.
8. वायुपुराण,59.30.
9. निरुक्त,प्रथम अध्याय, पृ.-15.
10. श्रीमद्भागवत पुराण,11.3.219.
11. भारतीय दर्शन, पृ.-125.
12. मुण्डकोपनिषद,1.13.
13. रामायणकालीन संस्कृति.
14. वाल्मीकि रामायण,2.111.3.
15. रामायणकालीन संस्कृति, पृ.-120.
16. महाभारत,12.107.11.

17. वही,107.13.
18. उद्योगपर्व,44.6.20.
19. श्रीमद्भगवत गीता,11.43.
20. मनुस्मृति,2.140.
21. वही,2.141.
22. वही,2.142.
23. नारद स्मृति,3.28.
24. राष्ट्रपथप्रदर्शन,11.3.
25. वही,11.4.
26. वही,11.5–6.
27. महाभारत,1.3.32.
28. वही,11.7.
29. राष्ट्रपथप्रदर्शनम्,11.27.
30. वही,11.1–2.
31. वही,32–33.
32. वही,11.36.
33. वही,11.37–38.
34. योगी का आत्मचरित्र, पृ.-24,27.
35. महर्षि दयानंद सरस्वती का जीवन चरित, 68,69.
36. योगी का आत्मचरित्र, पृ.-251.
37. अन्ताराष्ट्रिय ख्याति संग स्वामी विवेकानन्द, पृ.-12.
38. वही, पृ.-2.
39. वही, पृ.-3.
40. वही, पृ.-3.
41. वही, पृ.-3,4.
42. वही, पृ.-5.
43. वही, पृ.-6.
44. राष्ट्रपथप्रदर्शनम्,11.41.
45. वही,11.44.
46. वही,12.1.
47. वही,12.2.
48. वही,12.6.
49. वही,11–13.
50. वही,12.15–17.
51. वही,12.20.
52. वही,12.27.
53. वही 12.33.
54. सत्य के साथ मेरे प्रयोग, पृ.-2.
55. भारतीय संस्कृति, पृ.-47.

•